ब्रह्मवैवर्तादिग्रन्थेषु च महानाग्रहोऽस्ति तेषामेव पराजयो जात इति तथ्यमेवेति।।

भाषार्थ

एक दयानन्द सरस्वती नामक संन्यासी दिगम्बर गङ्गा के तीर विचरते रहते हैं जो सत्पुरुष और सत्यशास्त्रों के वेत्ता हैं, उन्होंने सम्पूर्ण ऋग्वेदादि का विचार किया है । सो ऐसा सत्यशास्त्रों को देख निश्चय करके कहते हैं कि **''पाषाणादि मूर्तिपूजन, शैव, शाक्त, गाणपत और वैष्णव आदि सम्प्रदायों और रुद्राक्ष, तुलसी माला, त्रिपुण्ड्रादि धारण का विधान कहीं भी वेदों में नहीं है।** इससे ये सब मिथ्या ही हैं । कदापि इनका आचरण न करना चाहिये । क्योंकि वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध के आचरण से बड़ा पाप होता है ऐसी मर्यादा वेदों में लिखी है ।''

इस हेतु से उक्त स्वामी जी हरिद्वार से लेकर सर्वत्र इसका खण्डन करते हुए काशी में आके दुर्गाकुण्ड के समीप आनन्दबाग में स्थित हुए। उनके आने की धूम मची । बहुत से पण्डितों ने वेदों के पुस्तकों में विचार करना आरम्भ किया । परन्तु पाषाणादि मूर्तिपूजा का विधान कहीं भी किसी को न मिला ।

बहुधा करके इसके पूजन में आग्रह बहुतों को है । इससे काशीराज महाराज ने बहुत से पण्डितों को बुलाकर पूछा कि इस विषय में क्या करना चाहिये ? तब सब ने ऐसा निश्चय करके कहा कि किसी प्रकार से दयानन्द सरस्वती स्वामी के साथ शास्त्रार्थ करके बहुकाल से प्रवृत्त आचार को जैसे स्थापना हो सके करना चाहिए ।

निदान कार्तिक सुदि १२, सं० १९२६, मङ्गलवार को महाराज काशीनरेश बहुत से पण्डितों को साथ लेकर जब स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने के हेतु आए तब दयानन्द स्वामी जी ने महाराज से पूछा कि आप वेदों की पुस्तक ले आए हैं वा नहीं ?

महाराज ने कहा कि—वेद सम्पूर्ण पण्डितों को कण्ठस्थ हैं । पुस्तकों का क्या प्रयोजन है ?

तब दयानन्द सरस्वती जी ने कहा कि—पुस्तकों के विना पूर्वापर प्रकरण का विचार ठीक-ठीक नहीं हो सकता । भला पुस्तक नहीं लाए तो नहीं सही परन्तु किस विषय पर विचार होगा ?

पण्डितों ने कहा कि—तुम मूर्तिपूजा का खण्डन करते हो । हम लोग उसका मण्डन करेंगे ।

पुनः स्वामी जी ने कहा कि–जो कोई आप लोगों में मुख्य हो वही एक पण्डित मुझ से संवाद करे ।

पण्डित रघुनाथप्रसाद कोतवाल ने यह नियम किया कि स्वामी जी से एक-एक पण्डित विचार करे ।

पुनः सब से पहले ताराचरण नैयायिक स्वामी जी से विचार हेतु सम्मुख प्रवृत्त हुए ।

स्वामी जी ने उनसे पूछा कि–आप वेदों का प्रमाण मानते हैं वा नहीं?

उन्होंने उत्तर दिया कि–जो वर्णाश्रम में स्थित हैं उन सब को वेदों का प्रमाण ही है ।*

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–कहीं वेदों में पाषाणादि मूर्तियों के पूजन का प्रमाण है वा नहीं ? यदि हो तो दिखलाइए और जो नहीं तो कहिये कि नहीं है ।

पण्डित ताराचरण ने कहा कि–वेदों में प्रमाण है वा नहीं परन्तु जो एक वेदों ही का प्रमाण मिलता है औरों का नहीं उसके प्रति क्या कहना चाहिए?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–औरों का विचार पीछे होगा । वेदों का विचार मुख्य है । इस निमित्त से इस का विचार पहले ही करना चाहिए। क्योंकि वेदोक्त ही कर्म्म मुख्य है । और मनुस्मृति आदि भी वेदमूलक हैं इस से इनका भी प्रमाण है । क्योंकि जो-जो वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध हैं उनका प्रमाण नहीं होता ।

पण्डित ताराचरण ने कहा कि–मनुस्मृति का वेदों में कहां मूल है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–'जो जो मनु जी ने कहा है सो-सो औषधों का भी औषध है' ऐसा सामवेद के ब्राह्मण में कहा है ।**

विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि–'रचना की अनुपपत्ति होने से अनुमानप्रतिपाद्य प्रधान, जगत् का कारण नहीं' व्यास जी के इस सूत्र का वेदों में क्या मूल है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–यह प्रकरण से भिन्न बात है । इस पर विचार करना न चाहिए ।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि–यदि तुम जानते हो तो अवश्य कहो ।

*** इससे यह समझना कि स्वामी जी भी वर्णाश्रमस्थ हैं वेदों को मानते हैं।**

**** यह कहना उन पण्डितों के मत के अनुसार ठीक है परन्तु स्वामी जी तो ब्राह्मण पुस्तकों को वेद नहीं मानते किन्तु मन्त्रभाग ही को वेद मानते हैं ।**

इस पर स्वामी जी ने यह समझकर कि प्रकरणान्तर में वार्त्ता जा रहेगी; कहा—जो कदाचित् किसी को कण्ठ न हो तो पुस्तक देखकर कहा जा सकता है ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि—जो कण्ठस्थ नहीं है तो काशी नगर में शास्त्रार्थ करने को क्यों उद्यत हुए ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—आप को सब कण्ठाग्र है ?

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि—हां हम को कण्ठस्थ है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—कहिये धर्म्म का क्या स्वरूप है?

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि—जो वेदप्रतिपाद्य फलसहित अर्थ है वही धर्म कहलाता है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—यह आप का संस्कृत है । इसका क्या प्रमाण है, श्रुति वा स्मृति कहिये ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि—जो चोदनालक्षण अर्थ है सो धर्म कहलाता है । यह जैमिनि का सूत्र है ।

स्वामी जी ने कहा कि—यह सूत्र है । यहां श्रुति वा स्मृति को कण्ठ से क्यों नहीं कहते ? और चोदना नाम प्रेरणा का है वहां भी श्रुति वा स्मृति कहना चाहिए जहां प्रेरणा होती है ।

जब इसमें विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा, तब स्वामी जी ने कहा कि—अच्छा आपने धर्म का स्वरूप तो न कहा परन्तु धर्म के कितने लक्षण हैं कहिये ?

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि—धर्म का एक ही लक्षण है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—वह कैसा है ?

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा ।

तब स्वामी जी ने कहा—धर्म्म के तो दश लक्षण हैं । आप एक ही क्यों कहते हैं ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि—वे कौन लक्षण हैं ?

इस पर स्वामी जी ने मनुस्मृति का वचन कहा कि—धैर्य्य १, क्षमा २, दम ३, चोरी का त्याग ४, शौच ५, इन्द्रियों का निग्रह ६, बुद्धि ७, विद्या का बढ़ाना ८, सत्य ९, और अक्रोध अर्थात् क्रोध का त्याग १०। ये दश धर्म के लक्षण हैं । फिर आप कैसे एक लक्षण कहते हैं ?

तब बालशास्त्री ने कहा कि—हां हमने सब धर्मशास्त्र देखा है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—आप अधर्म का लक्षण कहिये ?

तब बालशास्त्री जी ने कुछ भी उत्तर न दिया ।

फिर बहुत से पण्डितों ने इकट्ठे हल्ला करके पूछा कि—वेद में प्रतिमा शब्द है वा नहीं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—प्रतिमा शब्द तो है ।

फिर उन लोगों ने कहा कि—कहां पर है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—सामवेद के ब्राह्मण में है ।

फिर उन लोगों ने कहा कि—वह कौन सा वचन है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—यह है—"देवता के स्थान कम्पायमान होते और प्रतिमा हँसती है इत्यादि* ।

फिर उन लोगों ने कहा कि—प्रतिमा शब्द तो वेदों में भी है फिर आप कैसे खण्डन करते हैं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—प्रतिमा शब्द से पाषाणादि मूर्तिपूजनादि का प्रमाण नहीं हो सकता है । इसलिए प्रतिमा शब्द का अर्थ करना चाहिए इसका क्या अर्थ है ?

तब उन लोगों ने कहा कि—जिस प्रकरण में यह मन्त्र है उस प्रकरण का क्या अर्थ है ?

इस पर स्वामी ने कहा कि—यह अर्थ है—अब अद्भुत शान्ति की व्याख्या करते हैं ऐसा प्रारम्भ करके फिर रक्षा करने के लिए, इन्द्र [त्रातारमिन्द्र] इत्यादि सब मूलमन्त्र वहीं सामवेद के ब्राह्मण में लिखे हैं। इन में से प्रति मन्त्र करके तीन हजार आहुति करनी चाहियें । इस के अनन्तर व्याहृति करके पांच-पांच आहुति करनी चाहियें । ऐसा लिख के सामगान भी करना लिखा है । इस क्रम करके अद्भुत शान्ति का विधान किया है । जिस मन्त्र में प्रतिमा शब्द है सो मन्त्र मृत्युलोक विषयक नहीं किन्तु ब्रह्मलोक विषयक है । सो ऐसा है कि 'जब विघ्नकर्त्ता देवता पूर्वदिशा में वर्त्तमान होवे' इत्यादि मन्त्रों से अद्भुतदर्शन की शान्ति कहकर फिर दक्षिण दिशा, पश्चिम दिशा और उत्तर दिशा, इसके अनन्तर भूमि की शान्ति कहकर मृत्युलोक का प्रकरण समाप्त कर अन्तरिक्ष की शान्ति कहके, इसके अनन्तर स्वर्गलोक फिर परमस्वर्ग अर्थात् ब्रह्मलोक की शान्ति कही है । इस पर सब चुप रहे ।

फिर बालशास्त्री ने कहा कि—जिस-जिस दिशा में जो-जो देवता है उस-उस की शान्ति करने से अद्भुत देखने वालों के विघ्न की शान्ति होती है ।

*** यह वेदवचन नहीं किन्तु सामवेद के षड्विंश ब्राह्मण का है परन्तु वहां भी यह प्रक्षिप्त है क्योंकि वेदों से विरुद्ध है ।**

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—यह तो सत्य है परन्तु इस प्रकार में विघ्न दिखाने वाला कौन है ?

तब बालशास्त्री ने कहा कि—इन्द्रियां दिखाने वाली हैं ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—इन्द्रियां तो देखने वाली हैं दिखाने वाली नहीं । परन्तु 'स प्राची दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र' इत्यादि मन्त्रों में 'स' शब्द का वाच्यार्थ क्या है ? तब बालशास्त्री ने कुछ न कहा ।

फिर पण्डित शिवसहाय जी ने कहा कि—अन्तरिक्ष आदि गमन, शान्ति करने से फल इस मन्त्र करके कहा जाता है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—आपने वह प्रकरण देखा है तो किसी मन्त्र का अर्थ तो कहिये ?

तब शिवसहाय जी चुप हो रहे ।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—वेद किससे उत्पन्न हुए हैं?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि **वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं ।**

फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा—किस ईश्वर से ? क्या न्यायशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से वा योगशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से ? अथवा वेदान्तशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से ? इत्यादि ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—क्या ईश्वर बहुत से हैं ?

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—ईश्वर तो एक ही है परन्तु वेद कौन से लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—सच्चिदानन्द लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं ।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—ईश्वर और वेदों में क्या सम्बन्ध है ? क्या प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव वा जन्यजनकभाव अथवा समवायसम्बन्ध वा स्वस्वामिभाव अथवा तादात्म्य सम्बन्ध है ? इत्यादि ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—**कार्य्यकारणभाव सम्बन्ध है ।**

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—जैसे मन में ब्रह्मबुद्धि और सूर्य्य में ब्रह्मबुद्धि करके प्रतीक उपासना कही है वैसे ही शालिग्राम के पूजन का ग्रहण करना चाहिए ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—जैसे "मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादि वचन वेदों* में देखने में आते हैं वैसे "पाषाणादि

*** यह भी उन्हीं पण्डितों का मत है स्वामी जी का नहीं, क्योंकि स्वामी जी तो ब्राह्मण पुस्तकों को ईश्वरकृत नहीं मानते ।**

ब्रह्मेत्युपासीत'' इत्यादि वचन वेदादि में नहीं देख पड़ता फिर क्योंकर इस का ग्रहण हो सकता है ?

तब माधवाचार्य ने कहा कि—''उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳ सृजेथामयञ्च'' इति । इस मन्त्र में पूर्त्त शब्द से किसका ग्रहण है? ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—वापी, कूप, तडाग और आराम का ग्रहण है ।

माधवाचार्य ने कहा कि—इससे पाषाणादि मूर्तिपूजन का ग्रहण क्यों नहीं होता है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—पूर्त्त शब्द पूर्ति का वाचक है । इससे कदाचित् पाषाणादि मूर्तिपूजन का ग्रहण नहीं हो सकता यदि शङ्का हो तो इस मन्त्र का निरुक्त ब्राह्मण देखिए ।

तब माधवाचार्य ने कहा कि—पुराण शब्द वेदों में है वा नहीं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—**पुराण शब्द तो बहुत सी जगह वेदों में है** परन्तु पुराण शब्द से ब्रह्मवैवर्त्तादिक ग्रन्थों का कदाचित् ग्रहण नहीं हो सकता । क्योंकि **पुराणशब्द भूतकालवाची है और सर्वत्र द्रव्य का विशेषण ही होता है ।**

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—बृहदारण्यक उपनिषत् के इस मन्त्र में कि—''एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीति'' यह सब जो पठित है इसका प्रमाण है वा नहीं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—हां प्रमाण है ।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—यदि श्लोक का भी प्रमाण है तो सब का प्रमाण आया ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—सत्य श्लोकों ही का प्रमाण होता है औरों का नहीं ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—पुस्तक लाइए तब इसका विचार हो।

माधवाचार्य ने वेदों के दो पत्रे* निकाले और कहा कि यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ?

*** यह भी उन्हीं का मत है स्वामी जी का नहीं, क्योंकि ये गृह्यसूत्र के पत्रे थे ।**

स्वामी जी ने कहा कि–कैसा वचन है ? पढ़िये ! ।

तब माधवाचार्य ने यह पढ़ा–'ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानीति' ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–यहां पुराण शब्द ब्राह्मण का विशेषण है अर्थात् पुराने नाम सनातन ब्राह्मण हैं ।

तब बालशास्त्री जी आदि ने कहा कि–ब्राह्मण कोई नवीन भी होते हैं?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि नवीन ब्राह्मण नहीं हैं परन्तु ऐसी शङ्का भी किसी को न हो इसलिये यहां यह विशेषण कहा है ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि–यहां इतिहास शब्द के व्यवधान होने से कैसे विशेषण होगा ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–क्या ऐसा नियम है कि व्यवधान से विशेषण नहीं होता और अव्यवधान ही में होता है क्योंकि 'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।'' इस श्लोक में दूरस्थ देही का भी क्या विशेषण नहीं है ? और कहीं व्याकरणादि में भी यह नियम नहीं किया है कि समीपस्थ ही विशेषण होते हैं दूरस्थ नहीं ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि–यहां इतिहास का तो पुराण शब्द विशेषण नहीं है । इससे क्या इतिहास नवीन ग्रहण करना चाहिए ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–और जगह पर इतिहास का विशेषण पुराण शब्द है। सुनिये–''इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः।'' इत्यादि में कहा है ।

तब वामनाचार्य आदिकों ने कहा कि–वेदों में यह पाठ ही कहीं भी नहीं है । इस पर स्वामी जी ने कहा कि यदि वेद* में यह पाठ न होवे तो हमारा पराजय हो और जो हो तो तुम्हारा पराजय हो यह प्रतिज्ञा लिखो। तब सब चुप हो रहे ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–व्याकरण जानने वाले इस पर कहें कि व्याकरण में कहीं कल्मसंज्ञा करी है वा नहीं ?

तब बालशास्त्री ने कहा कि–संज्ञा तो नहीं की है परन्तु एक सूत्र में भाष्यकार ने उपहास किया है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–किस सूत्र के महाभाष्य में संज्ञा तो नहीं की और उपहास किया है । यदि जानते हो तो इसके उदाहरण पूर्वक समाधान कहो ?

तब बालशास्त्री और औरों ने कुछ भी न कहा । माधवाचार्य ने दो

*** यह उन्हीं पण्डितों के मतानुसार कहा है किन्तु स्वामी जी तो छान्दोग्य उपनिषद् को वेद नहीं मानते ।**

पत्रे वेदों के* निकालकर सब पण्डितों के बीच में रख दिये और कहा कि—यहां 'यज्ञ के समाप्त होने पर यजमान दशवें दिन पुराणों का पाठ सुने' ऐसा लिखा है । यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है ?

स्वामी जी ने कहा कि—पढ़ो इसमें किस प्रकार का पाठ है ? जब किसी ने पाठ न किया तब विशुद्धानन्द जी ने पत्रे उठा के स्वामी जी की ओर करके कहा कि तुम ही पढ़ो ।

स्वामी जी ने कहा कि—आप ही इसका पाठ कीजिए ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—मैं ऐनक के विना पाठ नहीं कर सकता, ऐसा कहके वे पत्रे उठाकर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने दयानन्द स्वामी जी के हाथ में दिये ।

इस पर स्वामी जी दोनों पत्रे लेकर विचार करने लगे । इसमें अनुमान है कि ५ पल व्यतीत हुए होंगे कि ज्यों ही यह उत्तर कहा चाहते थे कि—

"पुरानी जो विद्या है उसे पुराणविद्या कहते हैं और जो पुराणविद्या वेद है वही पुराणविद्या वेद कहाता है । इत्यादि से यहां ब्रह्मविद्या ही का ग्रहण है क्योंकि पूर्व प्रकरण में ऋग्वेदादि चारों वेद आदि का तो श्रवण कहा है, परन्तु उपनिषदों का नहीं कहा । इसलिए यहां उपनिषदों का ही ग्रहण है, औरों का नहीं । पुरानी विद्या वेदों ही की ब्रह्मविद्या है । इससे ब्रह्मवैवर्त्तादि नवीन ग्रन्थों का ग्रहण कभी नहीं कर सकते क्योंकि जो यहां ऐसा पाठ होता कि ब्रह्मवैवर्त्तादि १८ (अठारह) ग्रन्थ पुराण हैं सो तो वेद में** कहीं ऐसा पाठ नहीं है । इसलिये कदाचित् अठारहों का ग्रहण नहीं हो सकता ।" कि विशुद्धानन्द स्वामी उठ खड़े हुए और कहा कि हम को विलम्ब होता है हम जाते हैं ।

तब सब के सब उठ खड़े हुए और कोलाहल करते हुए चले गये। इस अभिप्राय से कि लोगों पर विदित हो कि दयानन्द स्वामी का पराजय***

*** ये पत्रे गृह्यसूत्र के पाठ के थे वेदों के नहीं ।**

**** यह पण्डितों के मतानुसार कहा है, यह स्वामी जी का मत नहीं है।**

***** क्या किसी का भी इस शास्त्रार्थ से ऐसा निश्चय हो सकता है कि स्वामी जी का पराजय और काशीस्थ पण्डितों का विजय हुआ ? किन्तु इस शास्त्रार्थ से यह तो ठीक निश्चय होता है कि स्वामी-दयानन्द सरस्वती जी का विजय हुआ और काशीस्थों का नहीं । क्योंकि स्वामी जी का तो वेदोक्त सत्यमत है उसका विजय क्योंकर न होवे ? काशीस्थ पण्डितों का पुराण और तन्त्रोक्त जो पाषाणादि मूर्तिपूजादि है उनका पराजय होना कौन रोक सकता है ? यह निश्चय है कि असत्य पक्ष वालों का पराजय और सत्य वालों का सर्वदा विजय होता है ॥**

हुआ । परन्तु जो दयानन्द स्वामी जी के ४ पूर्वोक्त प्रश्न हैं उनका वेद में तो प्रमाण ही न निकला फिर क्योंकर उनका पराजय हुआ?।। इति ।।

(लेखराम पृ० ५७०, दिग्विजयार्क पृ० १५)